International Journal of Arts & Education Research

हमारा धर्म और शिक्षा

Dr. Haridutt Sharma
Post Doctoral Fellow,
ICSSR, New Delhi

Dr. Manjusha Rani
Post Doctoral Fellow
UGC New Delhi.

हमें अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार ही किसी देश और जाति के प्रति कोई ईर्ष्या अथवा घृणाभाव नहीं है। हम अपने धर्म, संस्कृति और राष्ट्र की रक्षा करते हुए समुचित रूप में, अपने मान–सम्मान और धर्म का आश्रय प्राप्त करके ही राष्ट्रोत्थान की दिशा में प्रगतिशील रहना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि सत्य, दया, न्याय, अहिंसा, उदारता, स्वावलम्बन, शौर्य, सत्साहस और सद्विवेक इत्यादि मानवी गुणों को धारण करके, एक नवीन क्रान्ति को जन्म प्रदान किया जाए।
हमारा भारतवर्ष सदैव से ही धर्म प्राण देश रहा है; क्योंकि 'धर्म' ही मानव का संरक्षण और पोषण करता है। धर्म का नाश करने पर धर्म–परित्यागी का विनाश ही हो जाता है। हमारे आचार्यों का भी इस सम्बन्ध में यही कथन है–

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः

धर्म क्या है?

जिससे इस संसार में उन्नति हो और परलोक में कल्याण की प्राप्ति हो सके, वही 'धर्म' है।" यह महर्षि कणाद के वचन है।

'धर्म' से लोक और समाज का कल्याण सम्भव होता है। धर्म रहित समाज उच्छृंखल बन जाता है। धर्म ही हमें भगवत्प्रेम की ओर प्रेरित करता है। उसी के अनुवर्तन से अनुशासित होकर हम स्वेच्छाचारिता से सुरक्षित रह सकते हैं। इसलिए ईशोपनिषद् इस प्रकार आदेश देता है–

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किं च जगत्यां जगत्।
तेन व्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।

अर्थात् इस दृश्य जगत् में जो कुछ भी है, वह सब ईश भगवान् परब्रह्म परमात्मा से ओत–प्रोत है। इस संसार का उपभोग त्याग–भाव से ही करो। कभी किसी का धन मत छीनो।

जीओ और जीने दो

उक्त प्रकार का आदर्श–वाक्य हमारे भारत का एक मुख्य साधना तत्व रहा है। इसी कारण हमारे देश ने किन्हीं विदेशी और विजातीय राष्ट्रों पर सेना लेकर आक्रमण करने की नीति को स्वीकार नहीं किया, किसी जाति अथवा राष्ट्र को भयाकुल और संत्रस्त करके धन–सम्पत्ति का अपहरण करना उपयुक्त नहीं समझा। इसके विपरीत आज की भौतिकवादी सभ्यता, जो स्वेच्छाचारिता को प्रोत्साहन देकर अन्यान्य राष्ट्रों का स्वत्वापहरण करना धर्म मान रही है, घोर पाप है। इस प्रकार अधर्मनीति संसार के लिए एक महान् अनर्थकारी अभिशाप प्रमाणित हो रही है। वर्तमन में जिसको लोग 'स्वतन्त्रता कहते हैं, वह वास्तव में स्वतन्त्रता न होकर स्वच्छन्दता ही है। इस प्रकार की उच्छृंखल स्वतन्त्रता से न तो व्यक्तिगत उन्नति हो सकती है और न ही समाज एवं राष्ट्र का यथार्थ कल्याण ही सम्भव है। इस प्रकार की उदण्डतापूर्ण दुष्यवृत्ति से मानवता का विनाश अवश्य ही सन्निकट उपलब्ध होगा।

हमारे देश ने संसार के कल्याणार्थ विश्व–बन्धुत्व और विश्व–प्रेम की कल्पना के शुभ–संदेश मानव–जाति को प्रदान किये हैं। हमारे धर्म ने 'जीओ और जीने दो'–इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देकर संसार के सामने एक भव्य और नव्य संदेश प्रस्तुत किया है। वेद–भगवान इसी संदेश का उद्घोष करते हुए कहते हैं–

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानानामुपासते।।

(ऋग्वेद 10/1991/2)

अर्थात् तुम सब मिलकर रहो। तुम अपने धर्म में निरत रहो। एक बात बोलो। अपने मन में उन बातों की एक ही व्याख्या करो। एकचित्त होकर जिस प्रकार देव तुम्हारे प्रदान किये हुए हव्य को ग्रहण करता है, उसी प्रकार अपने सभी विरोधों को परित्याग करके उसके समान ही हव्यभाग का आदर करो। ऐसा ही उल्लेख ऋग्वेद 10/191/3 तथा 10/191/4 में भी किया गया है।

आदर्श समाज का पथ

उक्त आदर्श एक ऐसे समाज का है, जो सब प्रकार से एकरूपता के आधार पर अपना आचार–विचार बनाता है और धर्म के महाप्रसाद से जन कल्याणकारी पथ की यात्रा के लिए प्रयाण करने की सद्भावना रखता है। ऐसे समाज में आपा–धापी के लिये होती। पारस्परिक कोई विरोधभाव नहीं होता। एक व्यक्ति दूसरे को नीचे गिराकर मत्स्य–न्याय के दूषित संदेश के सम्बन्ध में कहीं से कोई प्रोत्साहन प्रदान नहीं करता। आज के विश्व की संकटापन्न अवस्था को अवलोकन करते हुए वर्तमानकालीन स्थिति में मानवीय सद्गुणों को सीखने–सिखाने का प्रयास किया जाना नितान्त ही आवश्यक हो रहा है। सबसे पूर्व हमारे भारतवर्ष को ही इस दिशा में पहल करना है। कहने के लिए हमारा देश स्वाधीन अवश्य है, किन्तु धर्माचरण के दृष्टिकोण से हम आज भी पराधीन हैं। आज भाषा, वेष–भूषा, आचार–विचार, खान–पान इत्यादि के विषय में हमने भौतिकवादी पाश्चात्य संसार का अन्धभक्ति के साथ अनुसरण करना ही अपना आदर्श–लक्ष्य बना रखा है। इस प्रकार की दुष्प्रवृत्ति से हमें सुरक्षित बनाना होगा। हम जानते हैं कि संसार के अन्यान्य राष्ट्रों के साथ ही हमें भी उदग्रीवी बनकर जीवित रहना हमारा एक दायित्वपूर्ण कर्त्तव्य है। स्वाधीन राष्ट्रों की विचारधारा के अनुसार हम भी इस संसार में मानव कल्याणकारी विश्व साम्राज्य के संचालन और परीक्षणार्थ एक महान स्वप्न का आभास पा रहे हैं।

हमें अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार ही किसी देश और जाति के प्रति कोई ईर्ष्या अथवा घृणाभाव नहीं है। हम अपने धर्म, संस्कृति और राष्ट्र की रक्षा करते हुए समुचित रूप में, अपने मान–सम्मान और धर्म का आश्रय प्राप्त करके ही राष्ट्रोत्थान की दिशा में प्रगतिशील रहना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि सत्य, दया, न्याय, अहिंसा, उदारता, स्वावलम्बन, शौर्य, सत्साहस और सद्विवेक इत्यादि मानवी गुणों को धारण करके, एक नवीन क्रान्ति को जन्म प्रदान किया जाए।

यह धर्महीन शिक्षा

आज की भौतिकवादी शिक्षा, मनुष्य को केवल सांसारिक सुख–उपभोग करने का ही साधन प्रदान करती है। इस शिक्षा का लक्ष्य धर्म और संस्कृति से कुछ भी सम्पर्क नहीं रखता। इस शिक्षा का बस, केवल यही एक लक्ष्य है–

यावज्जीवं सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।।

अर्थात् जब तक जीओ, सुखपूर्वक जीओ, मनमाना आचार व्यवहार पालन करो। धर्म, कर्म का कोई भी विवेक रखने की आवश्यकता नहीं है। सुखोपभोग के लिए चाहे जितना ऋणी क्यों न बनना पड़े, कोई चिन्ता नहीं है, क्योंकि कदाचित् फिर इस प्रकार का स्वच्छन्दतापूर्ण व्यवहार कर सकने का सुअवसर प्राप्त हो अथवा न हो।

आज हमारे देश में अर्थचक्र बहुत बुरी प्रकार से परिचालित हो रहा है। इसी के दुष्प्रभाव से गाँव–शहर, शिक्षित–अशिक्षित, पुरुष–स्त्री, शासकीय–अशासकीय, सेवक–किसान, श्रमिक, व्यापारी, ब्राह्मण–क्षत्रिय, वैश्य और हरिजन इत्यादि सभी कोई–सभी स्थान पर और सभी समय–छल–छिद्र, बेईमानी, भ्रष्टाचार, मिलावट, चारी, जुआ, शराब, व्यभिचार और अनेकानेक घृणित कृत्यों द्वारा 'धनार्जन' करने के लिए कटिबद्ध बन रहे हैं। इस प्रकार हमारे देश के इस घोर अधर्माचरण को कुशिक्षा का ही दूषित परिणाम कहा जाये तो अत्युक्ति नहीं है। अंग्रेजी शिक्षा ने हमारे देश के नवयुवकों एवं युवतियों के मन–मस्तिष्क को इतना कुण्ठित बना दिया है कि इन स्वतन्त्रता–प्राप्ति के पश्चात् भी उन्मादित अवस्था में कालयापन कर रहे हैं? कितने परिताप और पश्चाताप का विषय है कि जिस देश में लोकमान्य तिलक, महात्मा गांधी और पण्डित जवाहरलाल नेहरू जैसे त्यागी नेताओं ने आजादी के लिये अनेको कष्ट सहन किये हैं और देश के हज़ारों व्यक्तियों ने अपने आत्मबलिदान से भारत–माता के चरणों में सर्वस्व समर्पण कर दिया है, आज हम उन सभी बलिदानों को ठुकराकर रोजी–रोटी के टुकड़ों के लिए मर रहे हैं।

भूतकालीन शिक्षा

हमारी भारतीय शिक्षा का लक्ष्य पूर्ण तथा सात्विक प्रवृत्ति को प्रश्रय प्रदान करने का रहा है। संसार में जीवित रहने का अधिकार तो सभी को है, किन्तु यह अधिकार उच्छृंखल जीवन व्यतीत करने के लिए नहीं है। हमारा लक्ष्य यह हो कि हम मानवीय सत्कर्मों का पालन करते हुए अपने धार्मिक सिद्धान्तों का कभी भी विस्मरण न करें। भूतकालीन शिक्षा अपना कितना उच्चादर्श रखती थी–

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वादधनमाप्नोति धनाद्द्धर्म तत् सुखम्।।

अर्थात् "विद्या से नम्रता प्राप्त होती है। नम्रता द्वारा पात्रता की उपलब्धि होती है। पात्रता द्वारा ही धनार्जन किया जा सकता है। इस प्रकार से सत्प्रयास से प्रयास किये गए धन द्वारा धर्म सम्पादन होता है और उससे वास्तविक सुखोपलब्धि होती है।"

नवीन शिक्षा द्वारा क्रान्ति

हमारे स्वाधीन देश के अन्दर विविध प्रकार के कार्यक्रम प्रसारित हो रहे हैं। अनेक प्रकार की राष्ट्रोद्धारक पंचवर्षीय योजनाओं का कार्यान्वयन हो रहा है। भारत के कोने–कोने से हिन्दी–राष्ट्र भाषा और प्रान्तीय भाषाओं के द्वारा जन मानस का नूतन संस्करण होने की आवाज उठायी जा रही है। हम उस घड़ी की प्रतीक्षा कर रहे हैं, जब देश में साम्प्रदायिकता की सीमा से बाहर रहकर केवल भारत–राष्ट्रोत्थान के लक्ष्य से यहाँ की शिक्षा–दीक्षा का पुनर्निर्माण हमारी भारत–सरकार करने के लिए उद्यत बनेगी। जब तक भारतीय धर्म के उन्नत सिद्धान्तों के साथ पाश्चात्य संसार के उपयुक्त दृष्टिकोण का पारस्परिक समन्वय होकर शिक्षा–सिद्धान्त निर्धारित नहीं किये जायेंगे, तब तक हमारा राष्ट्र प्रगति नहीं कर सकेगा। हम पूर्व–पश्चिम के भँवरजाल में ग्रसित हैं। अतः आइए, हम सब अपनी अपनी सरस्वती देवी की पूजा वेद ध्वनि से करने के लिए प्रस्तुत हों और संतप्त राष्ट्र के जीवन को इस नूतन क्रान्ति द्वारा परितोष प्रदान करें।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. कल्याण – धर्मांक, गोता प्रेस, गोरखपुर
2. हमारी संस्कृति– श्रीभगवत नारायण, सरस्वती प्रेस, गया